

आदिवासियों की शिक्षा एवं साहित्य: एक अवलोकन

डॉ. विजेंद्र प्रताप सिंह

:- संक्षिप्त:-

शिक्षा एवं शिक्षण का महत्व सर्वकालिक है। इतिहास साक्षी है कि शिक्षित होने के पश्चात् ही कोई समाज विकास की गति को पकड़कर मुख्य धारा में शामिल हो पाया। डॉ. अम्बेडकर ने सम्पूर्ण दलित समाज के लिए तीन मंत्र दिए शिक्षित बनो, संगठित रहो और संघर्ष करो। इन तीनों घोष वाक्यों में से जिस समुदाय ने भी प्रथम का ही अनुपालन कर लिया वही आगे बढ़ सका। वैसे अधिकांश लोगों की अवधारणा में है कि ये दलितों के लिए एक दलित द्वारा दिए गए घोषवाक्य हैं परंतु इस धारणा को सर्वथा गलत तरीके से व्याख्यायित किया गया है क्योंकि शिक्षा का महत्व सभी समाज के सामाजिकों के लिए समान रूप से लाभकारी है। चूंकि भारत में जातीयता और जातीय संघर्ष बहुत ज्यादा है इसलिए यहां हर घटना को जातीयता के साथ जोड़ दिया जाता है। खैर, जो है सो है। हमें उसी व्यवस्था के साथ रहना जो यहां सदियों से प्रचलित हैं और इसमें धीरे-धीरे ही बदलाव की गुंजाइश है। एकबारगी तो किसी सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन संभव नहीं है। प्रस्तुत शोध पत्र का मुख्य प्रतिपाद्य आदिवासी समाज की शिक्षा, साहित्य और दोनों के माध्यम से उसके विकास के सोपानों पर विचार करना है। इसके अंतर्गत प्राथमिक स्तर से लेकर उच्च शिक्षा तक की शिक्षा व्यवस्था तथा शिक्षित होने के बाद आदिवासी समाज के लेखकों द्वारा रचित विविधात्मक साहित्य का अवलोकन करना है।

कुंजीशब्द - शिक्षित बनो, संगठित रहो और संघर्ष करो, स्वगठित शिक्षांत्र,

प्रस्तावना:-

किसी भी समाज का सर्वांगीण विकास तब तक संभव नहीं है जब तक की उसमें एकता और संगठनात्मक दृष्टि से सबलता नहीं आ जाती है। ये सबलता, मतबूती या दृढ़ता किसी समाज विशेष में शिक्षा के निरंतर क्रमबद्ध विकास से ही संभव हो सकती है। शिक्षा मानव को केवल शिक्षित ही नहीं करती वरन व्यक्ति के आत्मीय विकास में भी अहम भूमिका निभाती है। वैसे

शिक्षा अपने आप में बहुत ही व्यापक शब्द है, परंतु आधुनिक समाज में शिक्षा का अर्थ केवल साक्षरता, अध्ययन एवं अध्यापन तक सीमित सा कर लिया गया है। जीवन सर्वांगीण रूप से अपने आप में एक स्वगठित शिक्षातंत्र है, जिसमें अनुभवों के आधार पर व्यक्ति नित कुछ नया सीखता है। शिक्षा हमारी समुचित समृद्धि में आभूषण, विपत्ति में शरणस्थली और समस्त कालों में आनंदप्रदायक होती है। महान दार्शनिक एवं शिक्षाविद् डॉ. राधाकृष्णन भी मनुष्य को सही अर्थों में मनुष्य बनाने के लिए शिक्षा को सर्वाधिक आवश्यक मानते थे। उनके अनुसार, शिक्षा वह है, जो मनुष्य को ज्ञान प्रदान करने के साथ-साथ उसके हृदय एवं आत्मा का विकास करती है। शिक्षा व्यक्ति को स्वयं के विकास के साथ-साथ समाज और राष्ट्र के विकास के लिए भी प्रेरित करती है। शिक्षा के महत्व को परिलक्षित करते हुए स्वामी विवेकानंद जी ने कहा था कि, जिस शिक्षा से हम अपना जीवन निर्माण कर सकें, मनुष्य बन सकें, चरित्र गठन कर सकें और विचारों का सामंजस्य कर सकें यर्थाथ में यही वास्तविक शिक्षा होगी। वे हमारे देश के लिए ऐसी शिक्षा चाहते थे, जिसमें उसके अपने आदर्शवाद के साथ पाश्चात्य कुशलता का सामंजस्य हो। उनका कहना था कि लोगों को आत्मनिर्भर बनना अति आवश्यक है वरना सारे संसार की दौलत से भी भारत के एक गाँव तक की सहायता नहीं की जा सकती। अतः नैतिक तथा बौद्धिक, दोनों ही प्रकार की शिक्षा प्रदान करना देश व समाज का पहला कार्य होना चाहिए। ये कहना अतिशयोक्ति न होगी कि, आज जिस तरह का वातावरण चारों तरफ व्याप्त है ऐसे में ऐसी शिक्षा ही आवश्यकता है जिससे समाज के वास्तविक चरित्र का निर्माण संभव हो सकता है, सामाजिकों की मानसिक शक्ति, बुद्धि विकसित हो सकती है और आने वाले समय में हमारा देश युवाओं के मजबूत कंधों पर विकास की गति प्राप्त कर सकता है। परंतु आज राज्य और राष्ट्र के विकास को साक्षरता की कसौटी पर ही नापा जाने लगा है। भौतिकवादी स्वार्थपरकता सर्वत्र व्याप्त होने लगी है। चलिए प्रचलित अर्थ में यदि विचार किया जाए तो भी अक्षर ज्ञान, पुस्तकीय ज्ञान एवं प्रमाण पत्र, नौकरी, रोजगार की दृष्टि से यह भी कम महत्वपूर्ण नहीं है।

जहां तक प्रश्न है आदिवासी समाज का तो सर्वप्रथम 'आदिवासी' शब्द को हम देखें तो पाते हैं कि इसमें 'आदि' और 'वासी' दो शब्दों की संधि है, जिसका शाब्दिक अर्थ होता है-प्रथम, या प्राचीन निवासी। अर्थात् जो किसी भूमि का मूल निवासी हो। जहां तक बात है भारत की, तो यहां भी आदिवासी इस भूमि की 'आदि संतान' तथा 'आदि पुत्र' हैं और इन्हीं को वास्तविक रूप में इस भारत भूमि का उत्तराधिकारी माना जाना चाहिए था। परंतु भारत में प्रचलित मनुवादी विचाराधारा और ब्राह्मणवादियों ने भारत की मूल संतानों को ही समाज से परे जाने के लिए मजबूर कर दिया। आज आदिवासी शब्द के उच्चारण से ही हमारे सम्मुख सदियों से छला-सताया, नंगा किया और सोची-समझी साजिश के तहत वन-जंगलों में जबरिया भागने के लिए मजबूर किया गया असंगठित मनुष्य और उसका असंगठित एकाकी समुदाय का चित्र उपस्थिति हो जाता है। जिसमें कहीं-कहीं तो एक परिवार के रूप में दो चार ही सदस्य बचे हुए हैं और उनके इस दुनिया से विदा होते ही खत्म हो जाएगी एक परंपरा, एक संस्कृति। वह मनुष्य, जो अपनी स्वतंत्र परंपरा सहित, सहस्र वर्षों

से गांवों-देहातों-कस्बों से दूर घने जंगलों में वास करनेवाला संदर्भहीन मनुष्य है, जो एक विशेष पर्यावरण में अपने सामाजिक तथा सांस्कृतिक मूल्यों को प्राणों की कीमत पर भी संजोये रखने के लिए दृढ़संकल्पित हैं, प्रकृतिनिष्ठ, प्रकृति-निर्भर, कमर पर मात्र अपने यौनांगों को ढकने भर के वस्त्र या पत्र लपेटे, पीठ पर आयुध लेकर, भक्ष्य की खोज में शिकारी बना, दर-दर भटक रहा है। स्त्रियां भी बहुत कम कपड़ों या पत्रों के माध्यम से अपने यौनांगों को ढके हुए रहती हो, वो आदिवासी परिवार इस देश की मूल संतानें हैं। बहुत से ऐसे भी स्थान हैं जहां आदिवासियों को उनके शरीर को ढकने के लिए किसी आवरण की भी आवश्यकता होती है इसका ज्ञान तक नहीं हो पाया है। अंडमान एवं मध्य प्रदेश में आज भी ऐसे कई गांव हैं जहां आदिवासी सम्पूर्ण निर्वस्त्र पाए जाते हैं। ऐसा नहीं है कि आदिवासी सदा से ही ऐसे रहे, गोंडवाना, भील आदि कई राजवंश परंपराए भी रही आदिवासियों की परंतु इस समाज के चालाक और कुबृद्धि लोगों से उनकी समृद्धता देखी नहीं गई और सीधे साधे प्रकृति प्रेमी आदिवासियों को एकाधिक साजिशों का शिकार बनाकर इतने पीछे ढकेल दिया कि आज इक्कीसवीं सदी में भी वे पूरी तरह से असमृद्ध एवं अतिपिछड़े हुए हैं तथा बहुत ही लाचार, अभावग्रस्त, अन्यायग्रस्त तथा पशुवत् जीवनयापन करने के लिए विवश हैं। आदिवासियों को अभी तक वनवासी ,दास, जंगली, दस्यु कहा जाता है जिसने लंबे अरसे तक प्रकृति से जुड़ी अपनी संस्कृति धर्म और सामाजिक जीवन की परंपरा और व्यवस्था कायम की है। यही प्रकृति वन-जंगल आदिवासियों का अपना संसार समाज और घर है -

“इंद्रावती गोदावरी शबरी स्वर्ण रेखा तीस्ता बराक कोयल
सिर्फ नदियां नहीं उनके वाद्ययंत्र हैं
मुरिया बैगा संथाल मुंडा उरांव डोंगरिया कोंध पहाड़ियां
महज नाम नहीं वे राग हैं जिन्हें वह प्राचीन समय से गाता आया है
और यह गहरा अरण्य अध्यात्म नहीं उसका घर है।“

(मंगलेश डबराल, नये युग में शत्रु, 2013 पृ.सं. 16)

भारत में लगभग 700 आदिवासी समूहों का निवास है और ये हमारे देश जनसंख्या का एक बड़ा हिस्सा अपने आप में समाए हुए हैं। भारत के आदिवासी, उड़ीसा, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, राजस्थान, गजरात, आन्ध्र प्रदेश, महाराष्ट्र, बिहार, झारखंड, पश्चिम बंगाल में अल्पसंख्यक तथा पूर्वोत्तर राज्यों में बहुसंख्यक है। इन पूर्वोत्तर राज्यों में गुरुंग, लिंबू, लेपचा, आका, डाफला, अबोर, मिरी, मिशमी, सिंगपी, मिकिर, राम, कवारी, गारो, खासी, नागा, कुकी, लुसाई, चकमा इत्यादि प्रसिद्ध हैं जबकि संथाल, मुंडा, उरांव, हो, भूमिज, खड़िया, बिरहोर, जुआग, खोंड, सवरा, गोंड, भील, बैगा, कोरकू, कमार इत्यादि मध्य क्षेत्र में एवं भील, ठाकुर, कटकरी आदि (पश्चिमी क्षेत्र में) तथा चेंचू, कोंडा, रेड्डी, राजगोंड, कोया, कोलाम, कोटा, कुरुंबा, बडागा, टोडा, काडर, मलायन, मुशुवन, उराली, कनिक्कर इत्यादि दक्षिण क्षेत्र में निवास करते हैं। कई नृविज्ञानी इसका प्रयोग उन समाजों के लिए करते हैं जो मोटे तौर पर कुटुंब के आधार पर संगठित हुए। यहां भारत में सरकारी भाषा में एक आदिवासी समुदाय मूलतः

प्रशासनिक और राजनीतिक अवधारणा है। इस अवधारणा में आदिवासी होने का सामाजिक और आर्थिक पक्ष गायब है।

भौगोलिक दृष्टि से आदिवासी भारत का विभाजन चार प्रमुख क्षेत्रों में किया जा सकता है अर्थात् उत्तरपूर्वीय क्षेत्र, मध्य क्षेत्र, पश्चिमी क्षेत्र और दक्षिणी क्षेत्र। उत्तर पूर्वीय क्षेत्र के अंतर्गत हिमालय अंचल के अतिरिक्त तिस्ता उपत्यका और ब्रह्मपुत्र की यमुना-पद्मा-शाखा के पूर्वी भाग का पहाड़ी प्रदेश आता है। इस भाग के आदिवासी समूहों में गुरुंग, लिंबू, लेपचा, आका, डाफला, अबोर, मिरी, मिशमी, सिंगपी, मिकिर, राम, कवारी, गारो, खासी, नाग, कुकी, लुशाई, चकमा आदि उल्लेखनीय हैं। मध्यक्षेत्र का विस्तार उत्तर-प्रदेश के मिर्जापुर जिले के दक्षिणी ओर राजमहल पर्वतमाला के पश्चिमी भाग से लेकर दक्षिण की गोदावरी नदी तक है। संथाल, मुंडा, उरांव, हो, भूमिज, खड़िया, बिरहोर, जुआंग, खोंड, सवरा, गोंड, भील, बैगा, कोरकू, कमार आदि इस भाग के प्रमुख आदिवासी हैं। पश्चिमी क्षेत्र में भील, ठाकुर, कटकरी आदि आदिवासी निवास करते हैं। मध्य पश्चिम राजस्थान से होकर दक्षिण में सह्याद्रि तक का पश्चिमी प्रदेश इस क्षेत्र में आता है। गोदावरी के दक्षिण से कन्याकुमारी तक दक्षिणी क्षेत्र का विस्तार है। इस भाग में जो आदिवासी समूह रहते हैं उनमें चेंचू, कोंडा, रेड्डी, राजगोंड, कोया, कोलाम, कोटा, कुरुंबा, बडागा, टोडा, काडर, मलायन, मुशुवन, उराली, कनिक्कर आदि उल्लेखनीय हैं।

वंचितों, दलितों एवं उपेक्षितों संबंधी विमर्शों का सीधा संबंध सबल्टर्न विमर्श से है। इसके अंतर्गत आदिवासी विमर्श भी आता है क्योंकि यथापूर्व उल्लेख यह समुदाय भी सदियों से उपेक्षित एवं पीड़ित है ही। आदिवासियों को भारतीय संविधान में अनुसूचित जनजाति के नाम से संबोधित किया गया है। यथाप्रचलन आदिवासी शब्द का प्रयोग प्रस्तुत शोधालेख में किया जा रहा है। भूस्वामित्व खोना, विस्थापन, स्वास्थ्य, पारंपरिक ज्ञान और संस्कृति का नष्ट होना, सामुदायिक स्वामित्व से बेदखली, जैव विविधता में खलल, अशिक्षा, यौन शोषण, और आदिवासी महिलाओं के विरुद्ध हिंसा और सामाजिक-आर्थिक रूप से सत्ता में अल्पतम भागीरदारी आदि आदिवासियों की प्रमुख समस्याएं हैं। भूमंडलीकरण के वर्तमान युग में सम्पूर्ण विश्व जनसामान्य के इर्द-गिर्द सिमट सा आया है और इसी के फलस्वरूप पूर्व में प्रचलित अवधारणाओं की परिभाषाओं में बदलाव एवं पुर्नविचार की आवश्यकता का अनुभव किया जाने लगा है। दलित लेखन एवं दलित चेतना के प्रमुख बिंदु भी इससे अछूते नहीं रहे हैं। निम्न या वंचित कहे जाने वाले वर्ग का जीवन एवं इसकी बाध्ताएं समाज के सम्मुख खड़ी हैं। निम्न कहे जाने वाले समाज का सामर्थ्य न सिर्फ उसके प्रसार क्षेत्र में निहित है बल्कि वह सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त है और चूंकि सभी को चाहे-अनचाहे इसी संसार में जीवित रहना है तो ऐसे में व्यावहारिकता के तकाजे के अनुरूप सामाजिकों को उसके मुख्य तथ्यों से अवगत होना होगा। दलित साहित्य चेतना को व्यापक रूप में सबॉल्टर्न साहित्य कहा गया है। भारतीय साहित्य में 'सबअल्टर्न साहित्य' यानी समाज के पराधीन, दुखी, सताए हुए और निचले तबके के लोगों का साहित्य। भारतीय समाज के चार वर्गों में, यथा- दलित, आदिवासी,

नारी और हिजड़े। विषय विस्तार से बचने के लिए यहां आदिवासी समुदाय पर ही विचार करना समीचीन होगा।

आदिवासियों की शिक्षा:-

आदिवासियों की शिक्षा को दो रूपों में देखा जा सकता है प्रथम आदिकालीन शिक्षा पद्धति तथा द्वितीय वर्तमान शिक्षा पद्धति।

आदिवासी समाज या जनजातीय समाज का अध्ययन करना मानव शास्त्र और समाजशास्त्र की लंबी परंपरा रही है। वनों का सुरक्षा से ही आदिवासियों की परंपरागत मान्यताएँ, प्रथाएँ लोक कथाएँ, लोकगीत, लोक नृत्य, उनकी बोली-भाषा अथवा उनके जादू-टोने आदि के वाह्य संसार के हस्ताक्षेप से रक्षा प्राप्त होती रही है। वनों से उन्हें अनेक लाभ प्राप्त हुए हैं जैसे- आश्रम भोजन, रोजगार एवं सुदृढ़ संस्कृति की प्राप्ति। यही प्रकृति इन्हें नानाप्रकार से शिक्षा भी देती आई है। आदिवासियों की परंपरागत शिक्षा तकनीक में सर्वाधिक महत्वपूर्ण संस्था है घोटुल या गोतुल। सांस्कृतिक दृष्टिकोण से अत्यंत महत्वपूर्ण घोटुल के माध्यम से पता चलता है कि प्राचीन काल से ही आदिवासी समुदाय अपने युवक-युवतियों की प्रगति के लिए कितने सजग हैं। प्रायः समस्त आदिवासियों में 'घोटुल' नामक संस्था की स्थापना का प्रचलन है। बोली की विविधता के कारण इसके कई नाम प्रचलित हैं। मुड़िया (मुरिया) इसे 'घोटुल' कहते हैं तो भुइयां समाज में यह 'धंगर बस्सा' कहा जाता है। मुंडा एवं हो इसे 'गतिओरा' कहते हैं। उरांव आदिवासियों में यह संस्था 'धुमकुरिया' कही जाती है। असम के नागा आदिवासी इसे 'याकिचुकी' कहा करते हैं। उत्तर-प्रदेश के आदिवासी समुदायों द्वारा इसे 'रंग-बंग' नाम से नाम दिया हुआ है। यह संस्था पूर्णरूपेण अविवाहित कुमारों एवं कुमारियों को अपनी संस्कृति, धर्म आदि के ज्ञान को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित करने का सर्वाधिक महत्वपूर्ण माध्यम है। रात्रि में आदिवासी अविवाहित युवक एवं युवतियां इस मोहक-गृह में रहकर जीवनोपयोगी ज्ञान प्राप्त करते हैं। कहा जाता है कि यह 'घोटुल' आदिवासियों के लिंगो देवता का वरदान है। 'घोटुल' डिंडामहल अर्थात् अविवाहितों का राजप्रासाद है।

साधारणतः 'घोटुल' गांव के पास हरे-भरे, सुरम्य प्राकृतिक वातावरण में बनाए जाते हैं, जिसका निर्माण आदिवासी युवकों एवं युवतियों द्वारा स्वयं किसी बड़े की देख रेख में बनाया जाता है। दीवारों पर कई देवी-देवताओं की आकृतियां विविध रंगों में चित्रित की जाती हैं। युवा-गृह में एक बड़ा लंबा कमरा होता है, जो घास-फूस से छाया जाता है। इसमें प्रवेश के लिए एक छोटा सा दरवाजा बनाया जाता है। संध्या होते ही गांव के कुमार एवं कुमारियां इस गृह में जाते हैं और इसकी सफाई करने में लग जाते हैं। कतिपय आदिवासी जातियों में कुमारों के लिए पृथक् और कुमारियों के लिए अलग 'गोतुल' होते हैं, लेकिन ऐसे भी कई रंगबंग (घोटुल) हैं, जिनमें अविवाहित युवक-युवतियां एक साथ रहते हैं। यहां नृत्य-गानादि की शिक्षा भी दी जाती है और यौन विषयक प्रशिक्षण भी इन 'गोतुलों' में उपलब्ध होता है। मद्यपान और भोजन के बाद शीतकाल में युवागृह के प्रांगण में अलाव जलाए जाते हैं, जिनके पास बैठकर कहानियां सुनाकर मनोविनोद किया जाता

है। कामशास्त्र की शिक्षा इन गृहों में अनुभवी प्रौढ़-प्रौढ़ाएं ही देती हैं। शिकार करना, तीर चलाना, प्रकृति संरक्षण, वनोषधियों का ज्ञान आदि सभी कुछ दिया जाता है यहां बड़ी पीढ़ी द्वारा आगामी पीढ़ी को। युवक युवतियां अपनी इच्छानुसार युवक युवतियों को चुनते हैं और फिर विधिवत् इनका विवाह संपादित किया जाता है। कहा जाता है कि 'गोतुल' में गर्भाधान वर्जित है, लेकिन प्रेम स्वातंत्र्य के कारण यहां कभी-कभी चारित्रिक पतन भी हो जाता है।

वर्तमान शिक्षा प्रणाली एवं आदिवासी:-

स्वतंत्रता के बाद भारत सरकार द्वारा आदिवासियों की शिक्षा के लिए प्राथमिक स्तर से उच्च शिक्षा तक के विभिन्न प्रावधान किए हैं। संवैधानिक प्रावधानों के अनुसार जनजातीय कार्य मंत्रालय अनुसूचित जनजातियों के विकास कार्यक्रमों के लिए समग्र नीति, आयोजना और समन्वय के लिए नोडल मंत्रालय है। क्षेत्र के कार्यक्रमों और इन समुदायों की नीति, आयोजना, निगरानी, मूल्यांकन आदि के विकास की योजनाओं के विषय में, इनका समन्वय संबंधित केंद्रीय मंत्रालयों या विभागों, राज्य सरकारों और संघ राज्य क्षेत्रों के प्रशासन का दायित्व होगा। प्रत्येक केंद्रीय मंत्रालय या विभाग जो इस क्षेत्र से संबंध रखता है, नोडल मंत्रालय या विभाग होगा। जनजातीय कार्य मंत्रालय का गठन अक्टूबर 1999 में भारतीय समाज के सबसे वंचित वर्ग अनुसूचित जनजाति के एकीकृत सामाजिक-आर्थिक विकास के समन्वित और योजनाबद्ध उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए किया गया था। जनजातीय कार्य मंत्रालय, अनुसूचित जनजाति के विकास के लिए चलाई जा रही समग्र नीति, योजनाओं और उनका समन्वयन इसी मंत्रालय के माध्यम से किया जाता है। जनजातीय कार्य मंत्रालय की गतिविधियां भारत सरकार (व्यापार आवंटन) नियमावली, 1961 के तहत आवंटित विषयों से संबंधित हैं। इसके अनुसार अनुसूचित जनजातियों की सामाजिक सुरक्षा तथा सामाजिक बीमा, जनजाति कल्याण योजना, परियोजना तैयार करना, अनुसंधान, मूल्यांकन, सांख्यिकी एवं प्रशिक्षण, जनजाति के कल्याण के संबंध में स्वैच्छिक प्रयासों का संवर्धन और विकास, अनुसूचित जनजातियां, जिसमें इन जनजातियों के छात्रों के लिए छात्रवृत्तियां, अनुसूचित जनजातियों का विकास से संबंधित मामले आदि शामिल हैं।

भारत सरकार ने आदिवासी समाज को भारत के संविधान की पांचवी अनुसूची में 'अनुसूचित जनजातियों' के रूप में मान्यता प्रदान की हुई है। इन्हें अनुसूचित जातियों के साथ एक ही श्रेणी 'अनुसूचित जातियों और जनजातियों' के अंगतगता रखा गया है। संवैधानिक प्रावधान को अनुसूचित जनजातियों के लिए रक्षोपाय, दो भागों में विभाजित किया जा सकता है, प्रथम रक्षात्मक तथा द्वितीय विकासात्मक। अनुच्छेद 15 (4) सामाजिक, आर्थिक और शैक्षिक हितों के संवर्धन से संबंधित है। अनुच्छेद 19 (5) आदिवासी हितों की रक्षा से संबंधित है जिसमें व्यक्तिगत रक्षा के साथ उनकी संस्कृति आदि का रक्षण भी शामिल है। अनुच्छेद 23 मानव तस्करी को रोकने से संबंधित है। बहुत से आदिवासी क्षेत्रों से आदिवासी बालिकाओं, बालकों को बंधुआ मजदूर बनाए जाने का प्रचलन रहा है और इसी रोकथाम के लिए इस अनुच्छेद का निर्माण किया गया। अनुच्छेद 29 आदिवासियों

के सांस्कृतिक और शैक्षिक अधिकार से संबंधित है। इसके अनुसार एक सांस्कृतिक या भाषाई अल्पसंख्यक अपनी भाषा या संस्कृति के संरक्षण का अधिकार है। राज्य इस पर समुदाय की अपनी संस्कृति के अलावा अन्य किसी भी संस्कृति थोपने का कार्य नहीं करेगा। अनुच्छेद 335 के अनुसार अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों के दावों सेवाओं और संघ या किसी राज्य के मामलों के संबंध में पदों के लिए नियुक्तियों बनाने में ध्यान में रखा जाएगा। अनुच्छेद 338 के अनुसार राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किए जाने वाले अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए एक विशेष अधिकारी की होगी कि कहते हैं इसे राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग, 338(1) के तहत स्थापित किया गया है। अनुच्छेद 339 (1) के अनुसार राष्ट्रपति किसी भी समय और संविधान लागू होने के 10 वर्ष की समाप्ति पर आदेश द्वारा अनुसूचित क्षेत्रों के प्रशासन और राज्यों में अनुसूचित जनजातियों के कल्याण पर रिपोर्ट करने के लिए एक आयोग की नियुक्ति करेगा सकता है। नागालैंड (371 ए), असम (371 बी) और मणिपुर (371 सी), महाराष्ट्र और गुजरात (371) के राज्यों के संबंध में विशेष उपायों और प्रावधानों का प्रावधान है।

आदिवासियों की भाषाएं:-

अधिकांश आदिवासी संस्कृति के प्राथमिक धरातल पर जीवनयापन करते हैं। क्षेत्रीय समूहों में रहना इनकी विशेषता है और उनकी संस्कृति अनेक दृष्टियों से स्वयंपूर्ण रहती है। इन संस्कृतियों में ऐतिहासिक जिज्ञासा का अभाव पाया जाता एवं ऊपरी तौर बहुत कम पीढ़ियों तक यथार्थ इतिहास किंवदंतियों और पौराणिक कथाओं के सम्मिश्रण के रूप में मिलता है। सीमित परिधि तथा लघु जनसंख्या के कारण इन संस्कृतियों के रूप में स्थिरता रहती है, किसी एक काल में होनेवाले सांस्कृतिक परिवर्तन अपने प्रभाव एवं व्यापकता में अपेक्षाकृत सीमित होते हैं। परंपरा केंद्रित आदिवासी संस्कृतियाँ इसी कारण अपने अनेक पक्षों में रूढ़िवादी सी परिलक्षित होती हैं। भाषाशास्त्र की दृष्टि से उन्हें आस्ट्रो-एशियाई, द्रविड़ और तिब्बती-चीनी-परिवारों की भाषाएँ बोलनेवाले समूहों में विभाजित किया जा सकता है। भारत में सभी आदिवासी समुदायों की अपनी विशिष्ट भाषा है। भाषाविज्ञानियों ने भारत के सभी आदिवासी भाषाओं को मुख्यतः तीन भाषा परिवारों में रखा है। द्रविड़, आस्ट्रिक और चीनी-तिब्बती। लेकिन कुछ आदिवासी भाषाएं भारोपीय भाषा परिवार के अंतर्गत भी आती हैं। आदिवासी भाषाओं में 'भीली' बोलने वालों की संख्या सबसे ज्यादा है जबकि दूसरे नंबर पर 'गोंडी' भाषा और तीसरे नंबर पर 'संताली' भाषा है। भारत की 114 मुख्य भाषाओं में से 22 को ही संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल किया गया है। इनमें कुछ वर्ष पूर्व शामिल की गयी संताली और बोड़ो ही मात्र आदिवासी भाषाएं हैं। अनुसूची में शामिल संताली (0.62), सिंधी, नेपाली, बोड़ो (सभी 0.25), मिताइ (0.15), डोगरी और संस्कृत भाषाएं एक प्रतिशत से भी कम लोगों द्वारा बोली जाती हैं। जबकि भीली (0.67), गोंडी (0.25), टुलु (0.19) और कुडुख 0.17 प्रतिशत लोगों द्वारा व्यवहार में लाए जाने के बाद भी आठवीं अनुसूची में दर्ज नहीं की गयी हैं। भारतीय राज्यों में एकमात्र झारखण्ड में ही 5 आदिवासी भाषाओं- संताली, मुंडारी, हो, कुडुख और खडिया - को 2011 में द्वितीय राज्यभाषा का दर्जा प्रदान किया गया है।

आदिवासियों साहित्य:-

साहित्य लेखन की ओर रुख किया जाये तो कहना होगा कि आदिवासी रचनाशीलता की मुख्य विधाएं हैं-कविता, कहानी, उपन्यास और संस्मरण। आलोचना और व्यंग्य को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाने की दृष्टि से बुदु उरांव और मंजु ज्योत्नो के नाम लिये जा सकते हैं, लेकिन यह जोड़ते हुए कि उनके काम का परिमाण अभी तक अल्प है। झारखंडी भाषाओं के नवोन्मेष के लिए समर्पित कृतिकारों की तालिका लंबी हो सकती है, तो भी पीटर शांति नवरंगी, रामदयाल मुंडा और हरि उरांव के नाम-काम भुलाये नहीं जा सकते।

कहानी विधा में आदिवासी कलम का कोई चर्चित कथाकारों की संख्या कम है। वाल्टभर भंगरा के दो कहानी संग्रह बहुत पहले छप चुके थे-‘देने का सुख’ और ‘लौटती रेखाएं’। पीटर पाल एक्काट के तीन कहानी संग्रह भी आठवें दशक में आ चुके थे-‘खुला आसमान बंद दिशाएं’, ‘परती जमीन’ और ‘सोन पहाड़ी’। जेम्स टोप्पो का कहानी संग्रह ‘शंख नदी भरी गोल’ भी इस श्रृंखला का संग्रह है। मंजु ज्योत्नाजे का कहानी संग्रह ‘जग गयी जमीन’ कम चर्चित रहा। एलिस एक्का की कहानियां ‘आदिवासी’ पत्रिका में प्रकाशित हुईं। रोज केरकेट्टा ने प्रेमचंद की दस कहानियों का अपनी मातृभाषा खड़िया में अनुवाद किया और स्वयं भी ‘भंवर’ जैसी मजबूत कहानी लिखी। आदिवासी कथाकारों के एकल कहानी संग्रहों की अभी भी कमी है।

उपन्यास लेखन के क्षेत्र में हेराल्डर एस. टोपनो के ‘अधूरे’ उपन्यास को पढ़ते हुए एक विस्फोटक संभावनाओं का साक्षात्कार होता है। आठवें दशक में आदिवासी कलम का हिंदी उपन्यास आया ‘सुबह की शाम’ जिसकी रचना वाल्टसर भंगरा ने की। ये उपनाम ‘तरुण’ से भी लिखते थे। सत्य भारती प्रकाशन, रांची से तीन उपन्यासों-‘तलाश’, ‘गैंग लीडर’ और ‘कच्ची कली’ का प्रकाशन दसवें दशक में हुआ। वरिष्ठा उपन्यासकार पीटर पाल एक्का का ‘जंगल के गीत’ उपन्यास पर्याप्त रूप से चर्चित रहा है। उन्होंने इस उपन्यास के माध्यम से ‘महान बिरसा’ के उलगुलान के संदेश को सामयिक संदर्भ में तुंबा टोली गांव के युवक करमा और उसकी प्रिया करमी के कथोपकथन के जरिए प्रस्तुत किया है। इस उपन्यास से पहले उनका एक और उपन्यास ‘मौन घाटी’ भी प्रकाशित हो चुका है। आदिवासी कथाकारों द्वारा साहित्य लिखा तो जा रहा है परंतु आधुनिक विषयों की कमी खलती है। उनके उपन्यास प्राचीन अवधारणाओं एवं कसौटियों पर ही अधिक आधारित रहे हैं। समग्रता में देखें तो समकालीन लेखन परिदृश्य से उनके गहन परिचय के सुयोग से एक बंद समाज की अन्तःक्रिया का दुर्लभ सिलसिला शुरू हो चुका है। झारखंडी भाषाओं के कथा साहित्य और हिंदी में भी, वस्तु कथन या प्रस्तुति का नया अंदाज एक बड़े दायरे को आंदोलित करने में समर्थ भी हो सकता है।

साहित्य तथा विमर्श के क्षेत्र में तथाकथित विद्वान वेमतलब का अस्मिता संघर्ष दिखाते हुए साहित्य को कई भागों में बांटने का प्रयास करते हुए देखे गए हैं जैसे- आदिवासियों के द्वारा

लिखा गया ही आदिवासी साहित्य है। अन्य के द्वारा लिखे गए साहित्य को आदिवासी साहित्य नहीं कहा जा सकता है। ये विभाजन ठीक दलित विमर्श के आधार पर कर लिया गया है। वैसे मेरे विचार से साहित्य समाज का होता है और व्यापक स्तर पर सभी समाज का हिस्सा है। इसलिए किसी भी समुदाय के व्यक्ति द्वारा लिखा गया वह साहित्य जो किसी समुदाय विशेष का विवेचन करता हो उसे उस समुदाय का साहित्य माना जाना चाहिए। उसमें नीहित चेतना, संवेदना पर ध्यान दिया जाना चाहिए न कि रचनाकार की जाति पर। कुछ मामलों में ये हो सकता है कि जिसने भोगा नहीं उसे क्या मालूम की वास्तविक दर्द क्या होता है परंतु वैसी स्थिति में भी आदिवासी इतर साहित्यकारों द्वारा लिखे साहित्य को जो कि पूरी तरह से आदिवासियों की संवेदना पर आधारित है उसे आदिवासी विमर्श का साहित्य ही माना जाना चाहिए। क्योंकि साहित्य पर किसी व्यक्ति विशेष या समुदाय का एकाधिकार कभी नहीं रहा और न ही भविष्य में ऐसा हो पाएगा। इसका चाहे तो विभाजन कर आदिवासियों द्वारा रचित साहित्य का आदिवासी साहित्य कहा जा सकता है और आदिवासी इतर साहित्यकारों द्वारा रचित साहित्य को आदिवासी संवेदना का साहित्य तो कहा ही जा सकता है।

आदिवासियों का मौखिक साहित्य अत्यंत समृद्ध है। पुरखा (लोक) कथाओं, गीतों, कहावतों और मुहावरों की वाचिक परंपरा आदिवासी समुदायों में भरी-पूरी है। अपनी इस वाचिक परंपरा को आदिवासी 'पुरखा साहित्य' (वंदना टेटे, 2012) कहते हैं जबकि हिंदी में इन्हें 'लोक साहित्य' एवं अंग्रेजी में 'फोक लिटरेचर' कहा जाता है। भारत के आदिवासी भाषाओं में कम से कम 1500 से अधिक लेखक हैं जो नियमित रूप से साहित्य रचना कर रहे हैं। अकेले संताली में ही लेखकों की संख्या 1000 से ऊपर है। प्रत्येक वर्ष झारखंड और देश के दूसरे आदिवासी क्षेत्रों में लगभग 100 पुस्तकों का प्रकाशन और लोकार्पण होता है। राष्ट्रीय स्तर पर देशज और आदिवासी लेखकों के कई बड़े संगठन हैं जिनमें झारखंडी भाषा साहित्य संस्कृति अखड़ा, ऑल इंडिया संताली राइटर्स एसोसिएशन, कुडुख लिटरेरी सोसायटी, आदिवासी साहित्य सम्मेलन महाराष्ट्र आदि प्रमुख हैं। जो मूलनिवासियों और आदिवासियों के नेतृत्व में संचालित हैं। समुदाय स्तर पर भी हर समुदाय का अपना साहित्यिक संगठन है, जैसे, मुण्डा साहित्य सभा, बोड़ो साहित्य सभा आदि। (आदिवासी साहित्य- <http://www.lakshyacompetition.com>)

विगत दो दशकों में हिंदी साहित्य जगत में आदिवासी लेखकों की पैठ और पहचान बहुत हद तक बन चुकी है और स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि लेखन-प्रकाशन के बहुमुखी क्रियाकलापों के बल पर आदिवासी साहित्य लेखन क्षेत्र की प्रतिभाओं के मार्ग खुले हैं और कई समर्थ संभावनाओं की उपलब्धियों को आधार भी मिला है। नागपुरी, कुरमाली और खोरठा जैसी क्षेत्रीय भाषाओं और मुंडारी, कुडुख, संताली और खड़िया जैसी जनजातीय भाषाओं में साहित्य की प्रमुख विधाओं में लगातार लिखा-पढ़ा जा रहा है, किताबें छप रही हैं, पत्रिकाएं निकल रही हैं। कुछ समय पहले तक शिक्षित आदिवासी जन हिंदी भाषा-साहित्य के नियमित पाठक भर थे, अब उनमें बहुत से हिंदी के लेखक के रूप में स्थापित हो चुके हैं। मंच, मीडिया, पत्रिकाओं और किताबों के

मेले में उनके कदम दृढ़ता से अग्रसर हो रहे हैं। सृजन और विचार की यह सतरंगी दुनिया कभी तो कोरस के सामूहिक अंदाज में साकार होती है तो कभी एकल कृतित्वों की उपलब्धियों के बल पर प्रभावी बन जाती है। वर्तमान तिथि में आदिवासी कलम की धार आंचलिक, क्षेत्रीय और राष्ट्रीय स्तर तक प्रभावी बन चुकी है।

पत्र, पत्रिकाएं तथा वेबसाइट:-

पत्र-पत्रिकाओं में छिटपुट लिखने वाले युवा कवियों-कवियत्रियों पंक्ति अब लंबी होती नजर आ रही है। आदिवासी कलम की हिंदी कविता बृहत्तर हिंदी पट्टी की शेष कविता से अपनी अलग पहचान जिस साझा रूझान से रेखांकित करती है, वह है प्रतीक चरित्रों और घटनाओं का संप्लिष्ट कथात्मक निवेश और प्रतिरोध के आंचलिक रंग। इनमें वर्णित यथार्थ का अर्थ अमूर्त स्थितियों का हवाई सर्वेक्षण और अखबारी समाज चेतना की अनुकृति कतई नहीं है। फ्रांसिस्का कुजूर अपनी मातृभाषा कुडुख के साथ हिंदी में भी कविताएं और कहानियां लगातार लिख रही हैं और अपने परिवेश की दुर्दशा के प्रति सजग संवेदना के लिए पढ़ी-सराही जा रही हैं। झारखंडी भाषा साहित्य संस्कृति अखड़ा पिछले दस वर्ष से राज्य की पारंपरिक भाषा-संस्कृति को समृद्ध कर रहा है। वंदना टेटे इसकी संस्थापक महासचिव हैं। आज अखड़ा न केवल राज्य के आदिवासी लेखकों को एक मंच दे रहा है, बल्कि आदिवासी साहित्य के जरिए राष्ट्रीय परिदृश्य में आदिवासी सवालों पर सार्थक हस्तक्षेप भी कर रहा है। वंदना पिछले आठ सालों से अपनी त्रैमासिक पत्रिका 'झारखंडी भाषा साहित्य संस्कृति अखड़ा' के माध्यम से सभी झारखंडी भाषाओं के साहित्य को प्रकाश में ला रही हैं। नागपुरी में 'जोहार सहिया' मासिक पत्रिका और 'जोहार दिसुम खबर' नामक पाक्षिक पत्र का प्रकाशन भी कर रही हैं। फाउंडेशन की ओर से अब तक आदिवासी, क्षेत्रीय और हिंदी भाषाओं में लगभग सवा सौ किताबें प्रकाशित कर चुकी हैं। 'प्यारा केरकेट्टा फाउंडेशन' ने भी वंदना टेटे के नेतृत्व में कई उल्लेखनीय कार्य निष्पादित किए हैं। वर्ष 2002 में देश-विदेश तक अपनी आवाज पहुंचाने के लिए 'खड़किया डॉट इन' नामक वेबसाइट संचालित करना प्रारंभ किया, जो कि हिंदी, झारखंड की आदिवासी व दस क्षेत्रीय भाषाओं में सूचना उपलब्ध कराने वाली भारत की पहली व एकमात्र साइट रही। इनके सहयोग से झारखंडी भाषाओं में 'पांजा', 'आखांडन', 'गोतिया', 'सांगोम' आदि दर्जन भर पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन शुरू हुआ। खोरठा, नागपुरी और हिंदी में अनेक वेबसाइटों का निर्माण भी फाउंडेशन ने करवाया गया है। हिंदी एवं आदिवासी भाषा 'खड़िया' में लेख, कविताएं, कहानियां स्थानीय एवं राष्ट्रीय पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित तथा आकाशवाणी रांची (झारखंड) से लोकगीत, वार्ता व साहित्यिक रचनाएं प्रसारित, झारखंड आंदोलन की पत्रिका 'झारखंड खबर' (1990-92, रांची) का उप-संपादन। झारखंड की पहली आदिवासी बहुभाषायी (आदिवासी, क्षेत्रीय एवं हिंदी सहित 11 भाषाओं में) त्रैमासिक पत्रिका 'झारखंडी भाषा साहित्य संस्कृति अखड़ा' का नियमित प्रकाशन एवं संपादन 2004 से झारखंड की आदिवासी-देशज भाषा 'नागपुरी' में मासिक पत्रिका 'जोहार सहिया' का नियमित प्रकाशन एवं प्रधान संपादक। फरवरी 2007 से खड़िया मासिक पत्रिका 'सोरिनानिंग' का संपादन-प्रकाशन। सन् 2008 से प्रकाशित पुस्तकें हैं- पुरखा लड़ाके (आदिवासी

इतिहास), किसका राज है (आदिवासी समुदाय के सामाजिक-आर्थिक सवालों पर विमर्श), झारखंड एक अंतहीन समरगाथा (बच्चों के लिए झारखंड के इतिहास पर सचित्र पुस्तिका), असुर सिरिंग (असुर लोकगीतों का संग्रह-संपादन सुषमा असुर के साथ), आदिवासी साहित्य परंपरा और प्रयोजन (आदिवासी साहित्य सिद्घांत) इत्यादि। ([http://www.prabhatkhabar.com/news/46951 & story.k~html](http://www.prabhatkhabar.com/news/46951_story.k~html)) साप्ताहिक 'ग्राम निर्माण' के संपादन से जुड़े आदित्य मित्र संताली, 'तरंग भारती' की कार्यकारी संपादक पुष्पा टेटे, 'देशज स्वन' से जुड़े सुनील मिंज, अखड़ा की वंदना टेटे और सांध्य दैनिक 'झारखंड न्यूटज लाइन' के संपादक वरिष्ठ पत्रकार शिशिर टुडु अन्य प्रमुख दिग्गज हैं जो झारखंडी भाषाओं की श्रीवृद्धि में लगे हुए हैं। अब तक जिन आदिवासी हिंदी लेखकों की पुख्ता पहचान बन चुकी है, उनमें आदित्य मित्र संताली, एलिस एक्का, पीटर शान्तिल नवरंगी, रामदयाल मुंडा, निर्मला पुतुल, रोज केरकेट्टा, मंजु ज्योअत्नाता, पीटर पॉल एक्काद, जेम्स टोप्पो, हेराल्डु एस. टोपनो, वाल्टर भंगरा, मार्टिन जॉन अजनबी, ग्रेस कुजूर, महादेव टोप्पो, मोतीलाल, वासवी किड़ो, दयामनी बरला, सुनील मिंज, शिशिर टुडु, पुष्पा टेटे, जोवाक तोपनो, जेवियर कुजूर, वंदना टेटे, सरिता सिंह बड़ाइक, शान्ति खलखो और फ्रांसिका कुजूर इत्यादि। सृजन और विचार के क्षेत्र में झारखंड की आदिवासी कलम के अवदान के कई पक्ष और विधाएं हैं। इस देश के विचारकोश को समय-समय पर अनेक धरतीपुत्रों ने समृद्ध किया है। लेकिन पत्र-पत्रिकाओं में जिनकी नियमित उपस्थिति से सार्वजनिक प्रश्नों और समस्याओं को पर छाया धुंध का कोहरा छंटता रहा है, उनमें सबसे पहले याद आते हैं 'जंगल गाथा' से अपनी विशिष्ट पहचान बनाने वाले लेखक-पत्रकार हेराल्ड एस. टोपनो और बहुमुखी सृजनशीलता के धनी डॉ. रामदयाल मुंडा। सामाजिक-राजनीतिक विश्लेषण के लिहाज से एनई होरो, निर्मल मिंज, रोज केरकेट्टा, प्रभाकर तिकी, सूर्य सिंह बेसरा और महादेव टोप्पो जैसे कई लोगों ने अपनी भागीदारी को बार बार अर्थपूर्ण बनाया है।

कविता:-

हिंदी कविता में झारखंड का जो आदिवासी नाम सर्वाधिक जाना-पहचाना बन चुका है, वह है संताली कवयित्री निर्मला पुतुल का। उनकी कविता पुस्तक नगाड़े की तरह बजते शब्द बहुत चर्चा में रही है। रामदयाल मुंडा के दो कविता संग्रह भी हिंदी में खासे चर्चित हुए हैं- 'नदी और उसके संबंधी तथा अन्य गीत' और 'वापसी, पुनर्मिलन और अन्य गीत'। उनकी परवर्ती कविताओं में प्रकृति और मनुष्य के आदिम राग-विराग की जगह राजनीति और समाज की विसंगतियों ने ले ली है। 'कथन शालवन के अंतिम शाल का और विकास का दर्द जैसी उनकी कविताएं उजाड़ बनते आदिवासी साहित्य की व्यवथा-कथा और विसंगतियों को उकेरती हैं। ग्रेस कुजूर, मोतीलाल, और महादेव टोप्पो की कई कविताएं भी प्रभावी रही हैं।

भले ही आदिवासी समाज वैश्वीकरण के चमकते दर्पण में अपना रूप ग्रहण नहीं कर पाता परंतु महिला सशक्तिकरण की नीति उन्हें एक दरजा ऊपर स्थान प्राप्त कराने में सक्षम है, जो कि तथाकथित सभ्य और मुख्यधारा के समाज के लिए पथप्रदर्शक का कार्य कर सकता है। इस संदर्भ में संस्कृत की यह उक्ति सार्थक है कि, 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता' अर्थात् जहाँ नारियों

की पूजा होती है वहाँ देवता रमण करते हैं। यदि शेष भारत में नारियों के प्रति क्रांतिकारी बदलाव आधुनिक या कि उत्तर आधुनिक समाज की देन है तब आदिवासी समाज में यह परम्परागत उत्सव के रूप में प्राप्त है। जब एक तरफ भूमंडलीकरण के दौर में सामंती विचारधारा की धज्जियाँ उड़ाती मृदुला गर्ग, मैत्रेयी पुष्पा, उषाप्रियवंदा, मन्नू भंडारी इत्यादि नारी लेखिकाएँ हैं, तो दूसरी तरफ निर्मला पुतुल की यह कविता है, जिसमें पुरुष मानसिकता की पोल खुल जाती है- “क्या हूँ मैं तुम्हारे लिए/एक तकिया/कि कहीं से थका-माँदा आया/और सिर टिका दिया/कोई खूँटी/कि ऊब उदासी थकान से भरी/कमीज उतारकर टॉग दी/या आँगन में तनी अरगनी/कि घर-घर के कपड़े लाद दिए/कोई घर/कि सुबह निकला/शाम लौट आया?” (साहित्य अमृत, संपादक, त्रिलोकीनाथ चतुर्वेदी, मई 2011, वर्ष 16, अंक 10, पृष्ठ-66)

समकालीन हिंदी कविता में आदिवासी जीवन को व्यक्त करने वाले प्रमुख कवियों में हैं- मदन कश्यप, कवि लालसिंह बोयपाई, रवि गौड़, महादेव टोप्पो, हरिराम मीणा, रामदयाल मुंडा, ग्रेस कुजूर, निर्मला पुतुल, रणेन्द्र, विनोद कुमार शुक्ल, कुमारेंद्र पारसनाथ सिंह, एकांत श्रीवास्तव आदि प्रमुख हैं। इन कवियों ने अपनी कविता के माध्यम से आदिवासी अस्मिता को पहचानने की बात कही है। और आदिवासी कविता के खिलाफ हो रहे इस सारे षड्यंत्र को समकालीन कविता अपना विषय ही नहीं बनाती बल्कि उनके खिलाफ प्रतिरोध की एक जमीन तैयार करने का काम करती है।

कवि लालसिंह बोयपाई ‘सारंडा वन’ कविता में झारखंड के सौंदर्य- उसके वनों के सौष्ठव और समृद्धि का वर्णन करते नहीं अघाते कवि को झारखंड स्थित खजाने का आभास और एहसास दोनों है। विदेशी कंपनियों सूँघकर इन खजानों की टोह लगा लेती रही है। इसलिए कवि कहते हैं- “सात सौ फुट ऊंची चोटी वाली पहाड़ियों की शृंखलाएं। एक से बढ़कर एक खड़ी हैं। उनपर खनिज लदा। हर पहाड़ी में खनिज भर है। खनिज संपदाओं का खजाना। यह सारंडा वन है।” (युद्धरत आम आदमी, सं. रमणिका गुप्ता पृ. 7)

विस्थापन आदिवासियों की बहुत ही प्रमुख समस्या है। इसकी झलक हमें मदन कश्यप की कविता ‘आदिवासी’ में देखने को मिलती है - “बस अपना यह जंगल नदी पहाड़ हमें दे दो/हम इन्हें निचोड़ कर देश को आगे ले जाएँगे/दुनिया में अपनी तरक्की का मादल बजाएँगे/और यदि बचे रहे तो तुम्हें भी नाचने-गाने के लिए बुलाएँगे।” (मदन कश्यप, <http://www.hindisamay.com/contentDetail.k~aspx?id=1889&pageno=1>) “ओ रे/मानवता के आदिम नुमाइंदों/तुम जंगली द्वोर गँवार हो/एक सलाह है तुम्हें सभ्य बनाने की/रोपना होगा, मुख्यधारा की उर्वरा भूमि पर।” (हरिराम मीणा, अंडमान आदिवासियों को सभ्य बनाने की सलाह, सुबह के इंतजार’ काव्य संग्रह”, पृष्ठ सं. 41-42)

रवि गौड़ आदिवासी कविता के क्षेत्र में उभरता हुआ नाम है। “आदिवासी अभिव्यक्ति और आदिवासी संवेदना की लंबी कविता” लिखी जो कि 60 पृष्ठों की है। “वह कहता है -” “मैं इतिहास

हं/मुझे भुलाने की कोशिश/स्वयं के अस्तित्व को भुलाना होगा/ मैं तुम्हारा इतिहास हूं।”(रवि गौड:अनंग प्रकाशन, दिल्ली प्रथम संस्करण 2015)

आदिवासियों का अस्तित्व संकट के साथ पहचान की भी समस्या निरंतर बढ़ती जा रही है। सवर्ण लोग उन्हें सामान्य मनुष्य के तौर पर नहीं बल्कि जंगली, वनवासी, असभ्य और संविधान में आरक्षित मनुष्य के रूप में ही परिभाषित करते हैं। आदिवासी समाज की इस विडंबना पूर्ण स्थिति को महादेव टोप्पो की कविता ‘त्रासदी’ अभिव्यक्त करती है।-“इस देश में पैदा होने का/मतलब है-/आदमी का जातियों में बंट जाना/और गलती से तुम अगर हो गए पैदा/जंगल में/तो तुम कहलाओगे/आदिवासी-वनवासी-गिरिजन/वगैरह-वगैरह/आदमी तो कम से कम/कहलाओगे नहीं ही।”(रमणिका गुप्ता, ‘आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी’ पृष्ठ सं. 49)

डॉ. मंजू ज्योत्स्ना ने ‘ब्याह’ कविता के माध्यम से एक आदिवासी स्त्री को अपने माता-पिता का घर छोड़ दूसरे के घर जाने के बाद की पीड़ा को व्यक्त करती है। ससुराल में लड़कियों के साथ शोषण, अत्याचार, दहेज के लिए जलाना, खेत और घर को संभालना और यह सब बुधनी, मंगरी, सोमरी जैसी पीड़ित सहेलियों के उदाहरण देखे हैं। वह ऐसे पुरुष जाति का विरोध करती है जो स्त्री को सिर्फ चूल्हा और बिस्तर के माफिक समझता है। वह कहती है-“पिता मेरी शादी मत करना/मैंने देखी है-बुधनी की जिंदगी/बाल बच्चे संभाल खेत में खटती है/उसका मर्द साँझ, सवेरे, रात/मारता है कितना।(आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी- सं. रमणिका गुप्ता, वाणी प्रकाशन, संस्करण, 2008. पृष्ठ सं-98)

महाराष्ट्र में कुल 47 आदिवासी जनजातियाँ पायी जाती हैं। अन्य राज्यों तक तरह यहाँ भी आदिवासियों की जिंदगी बहुत ही दयनीय है। स्वतंत्रता के 69 साल बाद भी अपनी आदिम अवस्था में जी रही है। सह्याद्री, सातपुडा, गोंडवाना में यही परिलक्षित होता है। शिक्षा के प्रचार-प्रसार और सभ्य समाज द्वारा उपेक्षा का व्यवहार झेलते आदिवासी अब अपनी प्रगति के लिए चिंतन करने लगे हैं। महाराष्ट्र में आदिवासी लेखकों द्वारा वेदना और विद्रोह का साहित्य अच्छी मात्रा में लिखा जाने लगा है। भुजंग मेश्राम, वाहरु सोनवणे, डॉ. विनायक तुमराम, वामन शेडमाके, नेताजी राज गडकर, उषा किरण आत्राम आदि कुछ प्रमुख नाम हैं। विनायक तुमराम कविता के माध्यम से आशावादी दृष्टिकोण परिलक्षित होता है। वे अपने काव्य के माध्यम से एकलव्य से बातचीत करते हैं और एकलव्य के साथ हुए अन्याय को वह अपनी कविता के माध्यम से मुखरित करते हुए कहते हैं -“मित्रवर तुम्हारे तरकश में/तड़पने वाले तीक्ष्ण तीर से/ करुंगा मैं क्रांति, बनाऊंगा क्रांति की मशाल/तुम्हारे अंगुठे से बहे रक्त से लिखूंगा मृत्युलेख।”(आदिवासी साहित्य यात्रा- संपा. रमणिका गुप्ता, संस्करण, 2008, पृष्ठ सं. 60)

उपर्युक्त के अतिरिक्त अरुण कमल की कविता ‘तमसो मा योर्तिगमय’, (आदिवासी केंद्रित हिंदी साहित्य-सं. ऊषा कीर्ति राणावत, पृ.148), वाहरु सोनवणे की ‘स्टेज (आदिवासी स्वर और शताब्दी-रमणिका गुप्ता, पृ. 101), लक्ष्मण सिंह कावडे की ‘आज भी वैसी’(आज भी वैसी-लक्ष्मणसिंह

कावडे), महादेव टोप्पो की 'सबसे बड़ा खतरा'(आदिवासी स्वर और शताब्दी-रमणिका गुप्ता, पृ. 50) भी बहुत अच्छी कविताएं हैं। नन्हें सरिता बड़ाइक का कविता संग्रह 'सपनों का सुख' (रमणिका फाउंडेशन, नई दिल्ली) बहुत ही अच्छा काव्य संग्रह है।

कहानी:-

प्यारा केरकेट्टा (3 जून 1903 - 25 दिसंबर 1973) का झारखंडी समाज के शैक्षणिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास में प्यारा केरकेट्टा का योगदान अद्वितीय है। उन्होंने बेरथा बिहा कहानी लिखकर खड़िया भाषा में आधुनिक शिष्ट साहित्य की शुरुआत की। वाल्टेर भेंगरा के कहानी संग्रह 'देने का सुख' और 'लौटती रेखाएं' प्रकाशित हुए हैं। अस्सी के दशक में पीटर पाल एक्का के 'खुला आसमान बंद दिशाएं', 'परती जमीन' और 'सोन पहाड़ी' तीन कहानी संग्रह प्रकाशित हुए। 'शंख नदी भरी गेल' जेम्स टोप्पो का कहानी संग्रह है। मंजु ज्योत्ना का कहानी संग्रह 'जग गयी जमीन' भी अच्छा कहानी संग्रह है। एलिस एक्का की कहानियां 'आदिवासी' पत्रिका में प्रकाशित हुईं। आदिवासी भाषाओं के अनुवाद के क्षेत्र में रोज केरकेट्टा ने प्रेमचंद की दस कहानियों का अपनी मातृभाषा खड़िया में अनुवाद किया तथा 'भंवर' उनकी बहुत ही मजबूत कहानी है। "आदिवासी कहानियाँ" कहानी संग्रह, केदारनाथ मीणा का अलक प्रकाशन, जयपुर से प्रकाशित अच्छा कहानी संग्रह है।

उपन्यास:-

14 भागों में प्रकाशित इनसाक्लोपीडिया मुंडारिका को आज समूची दुनिया जानती है, परंतु बहुत कम लोगों को मालूम है कि अगर मेनेस राम नहीं होते तो फादर जौन हौफमैन इस विश्वविख्यात पुस्तक की रचना नहीं कर पाते। मेनेस राम ओड़या का जन्म 1883 ई. में बुरुरमा गांव में हुआ था। मुंडारी कथा-साहित्य में मेनेस राम ओड़या की प्रकाशित पुस्तक 'मतुराअ कानि' मुंडा जाति के जीवन का औपन्यासिक कोश है। यह उपन्यास पांच भागों में प्रकाशित है और मुंडा जीवन, समाज एवं संस्कृति की एक ऐतिहासिक कृति के रूप में लोकप्रिय है। आपका निधन 1968 में हुआ। (<http://k~adivasivimarsh.k~blogspot.in>)

देवेंद्र सत्यार्थी ने 'रथ के पहिए' (1950) उपन्यास आदिवासी समाज एवं उनकी विस्थापन की समस्या को समाज के सामने रखता है।

सन् 1954 में आंचलिक उपन्यास के रूप में प्रकाशित होने वाला फणीशवरनाथ रेणु का 'मैला आँचल' से हिंदी में एक नई उपन्यास पम्परा की शुरुआत होती है। 'मैला आँचल' जैसे तो आंचलिक उपन्यास के रूप में प्रसिद्ध है लेकिन इसमें संथाल आदिवासी समाज की समस्याओं को चित्रित किया गया है।

रांगेय राघव का 'कब तक पुकारूँ'(1958) उपन्यास में राजस्थान के ब्रज प्रदेश की सीमा पर स्थित बैर क्षेत्र के नट आदिवासियों के सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश को यथार्थ के साथ चित्रित

किया है। रांगेय राघव का 'धरती', राजेंद्र अवस्थी का 'जंगल के फूल'(1960) तथा 'सूरज किरण की छाँव' इस समय के महत्वपूर्ण उपन्यास हैं ।

शिवप्रसाद सिंह के 'शैलूश'(1989) उपन्यास में मिर्जापुर-विन्ध्याचल क्षेत्र में जीवनयापन करनेवाली खानाबदेश आदिवासी नट जाति के सामाजिक व सांस्कृतिक परिवेश के साथ-साथ उनके जीवन संघर्ष का चित्रण किया गया है ।

श्री प्रकाश मिश्र के 'जहां बांस फूलते हैं ' (1997) उपन्यास में मिजोरम के आदिवासी संघर्ष की कथा का वर्णन किया गया है, जो श्री प्रकाश मिश्र के प्रत्यक्ष अनुभव के आधार पर है।

मनमोहन पाठक का 'गगन घाटा घहरानी' एक महत्वपूर्ण औपन्यासिक कृति है जो सन् 1991 में 'कतार' पत्रिका के वार्षिक विशेषांक में प्रकाशित हुआ।

संजीव का 'जंगल जहाँ शुरू होता है' उपन्यास आदिवासी धारू जाति और डाकुओं एवं राजनीतिज्ञों के आपसी लड़ाई को प्रदर्शित करता है। समकालीन हिंदी कथा साहित्य में 'संजीव' का नाम अग्रणीय पंक्ति में आता है। संजीव ने अपने साहित्य में किसी ग्रामीण, अंचल विशेष के आदिवासियों के सामाजिक, सांस्कृतिक एवं उनके जीवन संघर्ष को उनकी ही ग्रामीण, देशज भाषा में चित्रित किया है। 'पांव तले दूब' के केंद्र में झारखंड का पंचपहाड़ अंचल के आदिवासियों के अस्तित्व, अस्मिता के इर्द-गिर्द विकसित और गुंफित हुई एक बेबाक कथा है। 'धार' एवं 'सावधान नीचे आग है' उपन्यासों में एक नई भूमि की तलाश है । 'सावधान नीचे आग है' में कोयला अंचल में मजदूरी करनेवाले आदिवासियों का जीवनसंघर्ष यथार्थ के रूप में हमारे सामने आता है।

वीरेंद्र जैन के 'पार' उपन्यास में विस्थापन की समस्या से संघर्ष करती हुई राउत जनजाति का जीवनसंघर्ष का चित्रण उपन्यासकार ने बेखुबी से किया है।

झारखंड के पीटर पॉल एक्का द्वारा रचित 'जंगल के गीत' में कथावस्तु आदिवासी प्रेमी युगल के इर्द-गिर्द घूमती है फिर भी आंचलिक, प्राकृतिक, आदिवासी संस्कृति के अन्य पक्षों तथा जीवन के अन्य प्रसंग भी अभिव्यक्त हुए हैं।

मंगल सिंह मुंडा का 'छैला संदु' का कथानक एक प्रेम कहानी पर आधारित है ।

'लौटते हुए' वाल्टर भेंगरा 'तरुण' का उपन्यास है । इस कृति में झारखण्ड अंचल की एसी महिलाओं के दुःख व शोषण को अभिव्यक्ति दी गई है जिन्हें रोजगार की तलाश में दूरस्थ महानगरों एवं अन्य राज्यों की ओर पलायन करना पड़ता है ।

मैत्रेयी पुष्पा ने 'अल्मा कबूतरी' (2000) में प्रकाशित उपन्यास में बुंदेलखंड की कबूतरा आदिवासियों के जीवन त्रासदी का चित्रण किया है। लेखिका ने आदिवासी समाज के अन्तर्विरोध, जीवनसंघर्ष और विस्थापन की गहरी समस्या को उठाया है ।

तेजिन्दर का 'काला पादरी'(2000) उपन्यास में दो संस्कृतियों की टकराहट से पैदा होने वाली जटिलताओं का खूबसूरत चित्रण हुआ है। इस उपन्यास के केंद्र में धर्मांतरण है और प्रमुख आदिवासी पात्र अपने परम्परागत धर्म को छोड़कर ईसाई बन जाता है। धर्मांतरण के जरिए सामाजिक पिछड़ेपन को दूर करना नहीं है। इसका लक्ष्य उन लोगों को अपने धर्म के अंतर्गत लाना है।

रणेन्द्र का उपन्यास 'ग्लोबल गाँव के देवता' (2013) में प्रकाशित बहुत ही चर्चित उपन्यासों में से एक है। इसमें आदिवासी जीवन की प्रमाणिक, संतुलित एवं व्यवस्थित उपस्थिति प्रस्तुत की गई है। 'ग्लोबल गाँव के देवता' झारखंड के आदिवासी असुर समुदाय के अनवरत जीवन संघर्ष का दस्तावेज कह सकते हैं। वैदिक साहित्य से शुरू होकर, रामायण, महाभारत और विभिन्न पुराणों में निर्मित असुरों की यह छवि एक और उसके समुदाय और जीवन के दानवीकरण और दूसरी ओर उनके जीवन के यथार्थ के मिथकीकरण का परिणाम है। वैदिक काल में आर्यों ने असुरों को राक्षस, दैत्य, दानव कहा उपनिवेशकाल में अंग्रेजों ने असभ्य, अधार्मिक व जन्मना अपराधी घोषित किया, आजादी के बाद देश की वर्तमान सरकार नक्सलवादी, माओवादी कहकर उनका शोषण कर रही है।

हरिराम मीणा ने राजस्थान के बांसवाडा अंचल में निवास करनेवाली भील एवं मीणा जनजाति को केंद्र में रखकर 'धूणी तपे तीर, उपन्यास की रचना की है। इस उपन्यास में राष्ट्रीय आंदोलन में आदिवासियों के योगदान को हमारे सामने रखता है।

राकेश कुमार सिंह का उपन्यास 'जो इतिहास में नहीं है' का केन्द्र पात्र हारिल जैसे उन सैकड़ों युवाओं को श्रद्धांजलि देता है जिनका नाम इतिहास के पन्नों पर दर्ज नहीं है।

मणि मधुकर के उपन्यास 'पिंजरे में पन्ना' में राजस्थान के रेगिस्थान क्षेत्र में यायावर जीवन जीनेवाले गाड़िया लुहारों के सामाजिक व सांस्कृतिक परिवेश का गहराई से जीवंत चित्रण किया है। मणि मधुकर ने 'पिंजरे में पन्ना' में पन्ना और रम्या में जिस चेतना को पिरोया है उसका अभी तक पूर्ण विकास नहीं हो पाया है। नारी विमर्श के इस दौर में ग्रामीण, पहाड़ी, जनजातीय, आंचलिक नारी आज भी उपेक्षित है।

हिमांशु जोशी का 'अँधेरा और' उपन्यास में थारू आदिवासियों के जीवन संघर्ष का नग्न यथार्थ देखने को मिलता है। इसमें आदिवासियों का पुलिस-जमींदारों द्वारा किया जानेवाला शोषण चित्रित हुआ है। शोषण के केंद्र में नारी है। पुलिस-जमींदारों के खिलाफ संघर्ष करने वाला पात्र परसिया सशक्त, प्रतिरोधी, विद्रोही एवं जीवंत पात्र बनकर समाज के सामने आता है जो शोषित समाज के लिए एक प्रेरणा बन जाता है।

उपन्यास लेखन के क्षेत्र में हेराल्ड एस. टोपनो के 'अधूरे' उपन्यास को पढ़ते हुए एक विस्फोटक संभावनाओं का साक्षात्कार होता है। आठवें दशक में आदिवासी कलम का हिंदी उपन्यास आया 'सुबह की शाम' जिसकी रचना वाल्टसर भेगरा ने की। ये उपनाम 'तरुण' से भी लिखते थे।

सत्य भारती प्रकाशन, रांची से तीन उपन्यासों-‘तलाश’, ‘गैंग लीडर’ और ‘कच्ची कली’ का प्रकाशन दसवें दशक में हुआ।

वरिष्ठ उपन्यासकार पीटर पाल एक्का का ‘जंगल के गीत’ उपन्यास पर्याप्त रूप से चर्चित रहा है। उन्होंने इस उपन्यास के माध्यम से ‘महान बिरसा’ के उलगुलान के संदेश को सामयिक संदर्भ में तुंबा टोली गांव के युवक करमा और उसकी प्रिया करमी के कथोपकथन के जरिए प्रस्तुत किया है। इस उपन्यास से पहले उनका एक और उपन्यास ‘मौन घाटी’ भी प्रकाशित हो चुका है।

शरद सिंह का उपन्यास ‘बेडनी’ भी मध्य प्रदेश की बेड़िया जनजाति पर आधारित बहुत ही अच्छा उपन्यास है।

आलोचनात्मक साहित्य:-

विगत दशक में आदिवासी साहित्य पर बहुत से आलोचनात्मक ग्रंथ आए हैं। आदिवासी दुनिया, आलेख, हरिराम मीणा का नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली से प्रकाशित अच्छा आलोचनात्मक ग्रंथ है। इस पुस्तक में आदिवासियों की भाषा, इतिहास और मिथकों इत्यादि पर आलेख है। इस पुस्तक में सभी आदिवासी जातियों की गोत्र समेत सूची भी दी गई है। ‘‘आदिवासी साहित्य विमर्श’’ गंगा सहाय मीणा, द्वारा संपादित आलोचनात्मक पुस्तक हैं जो कि अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली से प्रकाशित हुई है।

डॉ. विजेंद्र प्रताप सिंह के संपादन में तीन ग्रंथों का सेट ‘वंचित संवेदना का साहित्य’ नाम से आकांक्षा पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली से 2014 में प्रकाशित किया गया । इसके तृतीय खंड ‘वंचित संवेदना का साहित्य, आदिवासी विमर्श’ में कुल 25 रचनाकारों के लेख शामिल किए गए हैं। ‘‘आदिवासी लेखन एक उभरती चेतना’’ रमणिका गुप्ता, सामयिक प्रकाशन एक और महत्वपूर्ण ग्रंथ है। इस किताब में पूर्वोत्तर और पूरे आदिवासी साहित्य की विवेचना की गई है। इसमें उनकी रचनाओं का प्रयोग किया गया है। डॉ. फिरोज अहमद द्वारा वाइमय प्रकाशन, अलीगढ़ से आदिवासी आलोचना के लगभग बीस ग्रंथ प्रकाशित किए जा चुके हैं।

उपसंहार:-

सवर्णों ने कभी भी अपने ग्रंथों में दलित समुदायों को जगह नहीं दी और यही कारण है कि दलित, आदिवासी के लोगों को आज भी अपनी प्राचीन संस्कृति के बारे में बहुत ज्यादा नहीं पता है। समकालीन सवर्ण लेखकों के दृष्टिकोण में पर्याप्त परिवर्तन आया है और वे भी अपनी लेखनी वंचित संवेदनाओं को उकरने के लिए चला रहे हैं। ये समय की मांग के कारण भी हो सकता है क्योंकि प्राचीन साहित्य परंपराओं, स्वरूप आदि में बहुत परिवर्तन आ चुका है और जो समय के साथ नहीं चलेगा वह पिछड़ जाएगा। आज वंचित समाज की पीढ़ी शिक्षा की ओर उन्मुख होते हुए न सिर्फ अपने वर्तमान को लिपिबद्ध कर रही है बल्कि प्राचीन परंपराओं की भी खोज

कर रही है। निश्चित रूप से कहा जा सकता है आगामी पीढ़ियों को अपने जड़े तलाशने के लिए सवर्णों द्वारा लिख गए ग्रंथों का मुंह नहीं देखना पड़ेगा।

संदर्भ:-

1. मंगलेश डबराल, नये युग में शत्रु, 2013 पृ.सं. 16
2. आदिवासी साहित्य- <http://www.lakshyacompetition.com>
3. http://www.prabhatkhabar.com/news/46951_story.k~html
4. साहित्य अमृत, संपादक, त्रिलोकीनाथ चतुर्वेदी, मई 2011, वर्ष 16, अंक 10, पृष्ठ-66
5. युद्धरत आम आदमी, सं. रमणिका गुप्ता पृ. 7
6. मदन कश्यप, <http://www.hindisamay.com/contentDetail.k~aspx?id=1889&pageno=1>
7. हरिराम मीणा, अंडमान आदिवासियों को सभ्य बनाने की सलाह, सुबह के इंतजार काव्य संग्रह, पृष्ठ सं. 41-42
8. रवि गौड़: अनंग प्रकाशन, दिल्ली प्रथम संस्करण 2015
9. रमणिका गुप्ता, 'आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी' पृष्ठ सं. 49
10. आदिवासी स्वर और नयी शताब्दी- सं. रमणिका गुप्ता, वाणी प्रकाशन, संस्करण, 2008. पृष्ठ सं-98
11. आदिवासी साहित्य यात्रा- संपा. रमणिका गुप्ता, संस्करण, 2008, पृष्ठ सं. 60
12. आदिवासी केंद्रित हिंदी साहित्य-सं. ऊषा कीर्ति राणावत, पृ.148
13. आदिवासी स्वर और शताब्दी-रमणिका गुप्ता, पृ. 101
14. आदिवासी स्वर और शताब्दी-रमणिका गुप्ता, पृ. 50
15. <http://k~adivasivimarsh.k~blogspot.in>
16. तेजिन्दर. काला पादरी. नयी दिल्लीरू नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 2010.
17. राकेश कुमार सिंह. जो इतिहास में नहीं है, नयी दिल्लीरू भारतीय ज्ञानपीठ, 2005, पृष्ठ 35
18. रणेंद्र. ग्लोबल गाँव के देवता. नयी दिल्लीरू भारतीय ज्ञानपीठ, 2009.
19. हरिराम मीणा. धूणी तपे तीर. दिल्ली, साहित्य उपक्रम, 2008.

